वायु पुराण में पाशुपत योग

डॉ० कृष्णकान्त शर्मा

वायुपुराण पूर्वार्द्ध के एकादश चतुर्दश एवं पञ्चदश अध्याय पाशुपत योग नाम से अभिहित हैं। द्वादश अध्याय में योग के उपसर्गों का तथा त्रयोदश अध्याय में योग के ऐश्वर्यों का वर्णन है। इस प्रकार वायुपुराण पूर्वार्द्ध के एकादश अध्याय से पञ्चदश अध्याय तक पाशुपत योग का वर्णन उपलब्ध है। किन्तु इस पाशुपत योग की भूमिका -

योगं तपश्च सत्यञ्च धर्मञ्चापि महामुने।
माहेश्वरस्य ज्ञानस्य साधनञ्च प्रचक्ष्व नः।। [1]

दशम अध्याय के इस ६३ वें श्लोक से ही प्रारम्भ होती है।

पाशुपत योग के पाँच धर्म :

पाशुपत योग में प्राणायाम, ध्यान, प्रत्याहार, धारणा और स्मरण ये पांच धर्म कहे गये हैं-

प्राणयामस्तथा ध्यानं प्रत्याहोराऽथ धारणा।
स्मरणञ्चैव योगेऽस्मिन् पञ्च धर्माः प्रकीर्तिताः।। [2]

प्राणायाम :

वायुपुराण में प्राणायाम के विषय में चर्चा से पूर्व प्राणपदार्थ की निष्पत्ति के सन्दर्भ में दो शब्द कहना अप्रासङ्गिक नहीं होगा। प्राण शब्द अन प्राणने इस धातु से *'इलश्च'* [3] सूत्र द्वारा घञ् प्रत्यय करने पर निष्पन्न है। तदनुसार 'प्रकर्षेण अनिति-चेष्टते इति प्राणः'। कुछ लोगों के मत में णिजन्त अन प्राणने धातु से ड प्रत्यय अथवा अच् प्रत्यय के योग से प्राणशब्द की निष्पत्ति होती है। तदनुसार *'प्राणयति, अपानयति, समन्तादानयति इति प्राणशब्दार्थः।'* [4]

प्राणायाम शब्द प्राण और आयाम इन दो शब्दों से निष्पन्न होता है। प्राण का अर्थ प्राणशक्ति और आयाम का अर्थ विस्तार है। तदनुसार प्राणायाम शब्द का अर्थ प्राणशक्ति का विस्तार है। वायुपुराण में प्राणायाम शब्द के दो अर्थ बताये गये हैं १. प्राणों की गति- *'प्राणायामगतिश्चापि प्राणयाम उच्यते।'* [5] २. प्राणों का निरोध- *''प्राणानाञ्च निरोधस्तु स प्राणायामसंज्ञितः''।* [6]

प्राणायाम पुनः तीन प्रकार के हैं मन्द, मध्यम और उत्तम। इन भेदों का आधार मात्रायें हैं। १२ मात्रा में सम्पन्न प्राणायाम मन्द, २४ मात्रा में सम्पन्न प्राणायाम मध्यम और ३६ मात्रा में सम्पन्न प्राणायाम उत्तम प्राणायाम है। यहां मात्रा का तात्पर्य उद्घात अर्थात् एक आघात है।

मन्दो द्वादशमात्रस्तु उद्घाता द्वादश स्मृताः।
मध्यमश्च द्विरुद्घातश्चतुर्विंशतिमात्रिकः।।
उत्तमस्तत्रिरुद्घातो मात्राः षट्त्रिंशदुच्यते।
स्वेदकम्पविषादानां जननो ह्युत्तमः स्मृतः।। [7]

जिस प्रकार सिंह, हाथी तथा अन्य पशु पकड़े जाने पर धीरे-धीरे वश में आ जाते हैं ठीक उसी प्रकार दुराधर्ष (अपराभवनीय) प्राण भी योगाभ्यास से वश में हो जाता है। जब प्राण वश में होता है तब योगी जहां चाहें वहां प्राण को ले जा सकता है।

प्राणायाम के फल को बताते हुए वायुपुराण में कहा गया है कि प्राणायाम से योगी के समस्त दोष नष्ट होते हैं। योगी सत्त्वस्थ होते हैं। अर्थात् प्राणायाम से योगी का चित्त स्थिर होता है। पातञ्जल योग दर्शन में भी चित्तप्रसाद या चित्तस्थिरता के उपायकथनप्रसंग में ही प्राणायाम का निरूपण किया गया है, *(प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य* [८])। वायुपुराण में प्राणायाम को समस्त तप, व्रत, नियम एवं यज्ञ के समान कहा गया है। अर्थात् तप, व्रत, नियम एवं यज्ञ के अनुष्ठान से जो फल प्राप्त होते हैं प्राणायाम के विधिपूर्वक अभ्यास एवं अनुष्ठान से भी वे फल प्राप्त हो सकते हैं।

प्राणायाम के प्रयोजन :

वायुपुराण में कहा गया है कि महान् ऋषियों ने हजारों युग तक तपस्यारत होकर दिव्य चक्षु से प्राण की उपासना की है-

महायुगसहस्राणि ऋषयस्तपसि स्थिताः।
उपासते महात्मानः प्राणं दिव्येन चक्षुषा।। [९]

किन्तु *'प्रयोजनमनुद्दिश्य न मन्दोऽपि प्रवर्त्तते।'* ऐसी स्थिति में मंत्रद्रष्टा ऋषियों ने प्राण की उपासना क्यों की? प्राणोपासना का प्रयोजन क्या है? यह जिज्ञासा स्वाभाविक है। वायुमण्डल में प्राणायाम के चार प्रयोजन बताये गये हैं - १. शान्ति, २. प्रशान्ति, ३. दीप्ति और ४. प्रसाद

प्रयोजनानि चत्वारि प्राणायामस्य विद्धि वै।
शान्तिः प्रशान्तिदीप्तिश्च प्रसादश्च चतुष्टयम्।। [१०]

इहलोक एवं परलोक में जीव के द्वारा किये गये अशुभ कर्मों के जो कषाय हैं, पिता-माता ज्ञातिबन्धु आदि कारण उत्पन्न जो पाप हैं उन सब का उपशमन शान्ति है। प्राणायाम के द्वारा पापों के नष्ट होने की पुष्टि श्रीमद्भगवद्गीता माहात्म्य के इस श्लोक से भी होती हैं-

गीताध्ययनशीलस्य प्राणायामपरस्य च।
नैव सन्ति हि पापानि पूर्वजन्मकृतानि च।।

इहलोक एवं परलोक के हित के लिये लोभ एवं अहंकार आदि का संयम प्रशान्तिरूप तप है। प्राणायाम के द्वारा इस प्रकार का संयम प्राणायाम का द्वितीय प्रयोजन है। सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, तारा, वर्तमान, भूत एवं भविष्यकालीन ऋषिमुनियों के ज्ञानविज्ञान रूप सम्पदा का दर्शन (ज्ञान) दीप्तिरूप प्राणायाम का तृतीय प्रयोजन है। दीप्तिरूप इस प्रयोजन के सिद्ध होने पर योगी बुद्ध के समान हो जाते हैं। ज्ञानदीप्ति से समस्त वस्तुएं आलोकित हो जाती हैं। जिसके द्वारा इन्द्रियों, इन्द्रियों के विषय, मन तथा प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान नाम पञ्च प्राणों का प्रसादन हो उसे प्रसाद कहते हैं-

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थांश्च मनः पञ्च च मारुतान्।
प्रसादयति येनासौ प्रसाद इति संज्ञितः।। [११]

यह प्राणायाम का चतुर्थ प्रयोजन है। इस प्रकार प्राणायाम के चार प्रयोजन बता कर वायुपुराण में प्राणायाम को पाशुपत योग के पांच धर्मों में प्रथम तथा सद्यः फलप्रदायक कहा गया है -

इत्येष धर्मः प्रथमः प्राणायामश्चतुर्विधः।
सन्निकृष्टफलो ज्ञेयः सद्यःकालप्रसादजः।। [१२]

प्राणायाम विधि :

पाशुपत योग के अन्तर्गत वायुपुराण में प्राणायाम की विधि इस प्रकार बताई गई है- सर्वप्रथम ओंकार का उच्चारण कर चन्द्र और सूर्य को प्रणाम करना चाहिये। तदनन्तर स्वस्तिकासन, पद्मासन, अर्द्धपद्मासन,समजानु, एकजानु अथवा उत्तान में सुस्थित होकर, संवृतमुख होकर, पलकों को नीचे की ओर तथा वक्षःस्थल को आगे की ओर करके शिर और ग्रीवा को कुछ उन्नमित कर अपनी नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि स्थिर कर अन्य दिशाओं को न देखते हुए प्राणायाम करें ।

किञ्चिदुन्नमितशिराः शिरो ग्रीवां तथैव च।
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्।। [१३]

वायुपुराण में वर्णित इस प्राणायाम विधि का दर्शन हमें श्रीमद्भगवद्गीता में भी होता है-

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्। [१४]

इस प्रकार प्राणायाम की विधि बताने के पश्चात् वायुपुराण में प्रत्याहार का स्वरूप बताया गया है-

प्रत्याहार :

उक्त विधि से प्राणायाम कर योगी तमस् को रजस् से और रजस् को सत्त्व के द्वारा आवृत करें और सत्त्वस्थित होकर योगाभ्यास करते हुए समाहित हों। तदनु इन्द्रियों, इन्द्रियों के विषय, मन तथा पञ्च प्राणों का एक साथ प्रत्याहार करें। कूर्म जिस प्रकार अपने अंगों को समेट लेता है, ठीक उसी प्रकार जो योगी अपनी समस्त कामनाओं को संहृत कर आत्मरति हो जाता है वह अपने में विद्यमान आत्मतत्त्व का साक्षात्कार कर लेता है।

यस्तु प्रत्याहरेत् कामान् कूर्मोऽङ्गानीव सर्वतः।
तथात्मरतिरेकस्थः पश्यत्यात्मानमात्मनि।। [१५]

समस्त विषयों की निवृत्ति को ही वायुपुराण में प्रत्याहार कहा गया है-

निवृत्तिर्विषयाणान्तु प्रत्याहारस्तु संज्ञितः। [१६]

धारणा :

प्राणायाम एवं प्रत्याहार के बाद पाशुपत योग में धारणा का स्वरूप बताया गया है। देशविशेष में मन को स्थापित करना धारणा है -

मनसो धारणा चैव धारणेति प्रकीर्तिता। [१७]

पातञ्जल योगदर्शन में भी *'देशबन्धश्चित्तस्य धारणा'* ऐसा कहा गया है। किन-किन स्थानों में मन को स्थापित करना चाहिये ? इसका उत्तर देते हुए वायुपुराण में कहा गया है कि -

नाभ्यां च हृदये चैव कण्ठे उरसि चानने।
नासाग्रे तु तथा नेत्रे भ्रुवोर्मध्येऽथ मूर्द्धनि।।
किञ्चिदूर्द्धं परस्मिंश्च धारणा परमा स्मृता। [१८]

अर्थात् नाभि, हृदय, कण्ठ उर- मुख, नासिका का अग्रभाग, नेत्र, भौं का मध्यभाग, मूर्द्धा और उसके कुछ ऊपर के स्थान में धारणा उत्तम मानी गयी है। इस प्रकार प्राणायाम प्रत्याहार और धारणा के समवाय से योगसिद्धि होती है।

ध्यान :

उपर्युक्त योगसिद्धि अर्थात् प्राणायाम, प्रत्याहार और धारणा की सिद्धि से ध्यान सिद्ध होता है। ध्यानमुक्त होकर योगी को सदा आत्मतत्त्व का दर्शन करना चाहिये। किन्तु वह दर्शन सत्त्व की उत्पत्ति के बिना सम्भव नहीं है।

पाशुपत में कुछ स्थान तथा परिस्थितियों में ध्यान का निषेध भी किया गया है। उदाहरणार्थ अग्नि के समीप, सूखे पत्तों से तथा हिंस्र जन्तुओं से व्याप्त वन में ध्यान नहीं करना चाहिये। इसी प्रकार श्मशान, जीर्णस्थान, चतुष्पथ, कोलाहल तथा भय से व्याप्त स्थान में भी ध्यान वर्जित है। क्षुधा से आविष्ट होकर, अप्रसन्न होकर एवं व्याकुलचित्त होकर भी ध्यान नहीं करना चाहिये। ऐसी स्थिति में ध्यान करने पर योगी जड़ता, बधिरता, मूकता, अन्धता, स्मृतिलोप, जरा तथा रोगों से ग्रस्त होता है।

पाशुपत योग के अन्तर्गत उपर्युक्त दोषों से कदाचित् ग्रस्त होने पर योगी के लिए कुछ चिकित्सायें भी बताई गई हैं। उदाहरणार्थ अत्युष्ण स्निग्ध यवागू से वातदोष का प्रशमन होता है। दही अथवा यवागू के सेवन से वायु ऊर्द्धगामी होता है और यह गुदावर्त (कोष्ठबद्धता) की चिकित्सा है।

स्निग्ध एवं अल्प भोजन कर योगी सुखी रहता है। इस प्रकार पाशुपतयोग के अन्तर्गत योगियों के लिये कुछ चिकित्सा भी विहित है।

योग के उपसर्ग :

विविध कामनायें, स्त्रीसंसर्ग, विद्यादान के फल, धन, स्वर्ग आदि योग के उपसर्ग हैं। नित्य बह्मनिष्ठ होकर इन उपसर्गों अर्थात् योग के अन्तरायों से योगी मुक्त होता है, योगी जब योगबल से विद्या, काव्य,शिल्प आदि को प्राप्त करता है तब वह उन्मत्त सा हो जाता है। ऐसी स्थिति में योगी के समस्त ज्ञान नष्ट हो जाते हैं। अतः उपसर्ग के उपस्थित होने पर योगी को उसका परित्याग करना चाहिये।

पातञ्जल येाग दर्शन में भी योग के उपसर्ग इस प्रकार बताये गये हैं - प्रातिभज्ञान के उदय होने पर योगी सब कुछ जान लेता है। प्रातिभज्ञान तारकज्ञान है। यह विवेकज्ञान का पूर्वाभास है। जिस प्रकार

सूर्योदय के प्रसंग में उषा की प्रभा सूर्य का पूर्वाभास है। उसी प्रकार विवेकजज्ञान का पूर्वरूप प्रातिभज्ञान है। प्रातिभज्ञान से परमाण्वादि सूक्ष्म पदार्थों का, दृष्टि से अन्तरित या व्यवहित पदार्थों का, दूरदेशस्थ पदार्थों का, अतीतकालिक तथा भविष्यकालिक पदार्थों का ज्ञान होता है। श्रावण नामक सिद्धि से दिव्य शब्द सुनायी पड़ते हैं, वेदननामक विभूति से दिव्य स्पर्श की अनुभूति होती है, आदर्शनामक विभूति से दिव्य रूपों का साक्षात्कार होता है, आस्वादनामक विभूति से दिव्यपदार्थों के स्वाद की अनुभूति होती है, वार्तानामक विभूति से दिव्यगन्ध का अनुभव होता है-

ततः प्रातिभश्रावणवेदनादर्शास्वादवार्ता जायन्ते [१९]

किन्तु पातञ्जल योग दर्शन ने भी इन प्रातिभादि विभूतियों को समाधि में उपसर्ग (अन्तराय) और व्युत्थान में ही सिद्धिरूप माना है। *'ते समाधावुपसर्गा व्युत्थाने सिद्धयः'*। (पा०यो०सू० ३/३७)। पाशुपत योग में भी दिव्य मानुष, यक्ष, राक्षस गन्धर्व आदि के दर्शन, दिव्य शब्दों के श्रवण आदि को योग का उपसर्ग (अन्तराय) माना है।

प्रतिभाश्रवणे चैव देवानाञ्चैव दर्शनम्।
भ्रमावर्तश्च इत्येते सिद्धिलक्षणसंज्ञिताः।।
यक्षराक्षसगन्धर्वान् वीक्षते दिव्यमानुषान्।
वेत्ति तांश्च महायोगी उपसर्गस्य लक्षणम्।। [२०]

ऋषि, देव, गन्धर्व आदि इन उपसर्गों से युक्त होकर बार-बार संसार में बद्ध होते हैं। इसीलिए बुद्धिमान् योगी को इन उपसर्गों का त्याग करना चाहिये। जहां-जहां ऐश्वर्य है वहां आसक्ति है। आसक्ति से योग नष्ट होता है। ऐश्वर्य से राग उत्पन्न होता हैं। विराग ही ब्रह्म का स्वरूप है।

ऐश्वर्याज्जायते रागो विरागं ब्रह्म चोच्यते। [२१]

योग के ऐश्वर्य :

वायुपुराण पूर्वार्द्ध के त्रयोदश अध्याय में अणिमा, लघिमा, महिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व तथा यत्रकामावसायिता इन आठ ऐश्वर्यों का वर्णन किया गया है। ये ऐश्वर्य भी पुनः सावद्य, निरवद्य और सूक्ष्म होते हैं। सावद्य और निरवद्य पञ्चभूतात्मक हैं ओर सूक्ष्म इन्द्रिय, मन, अहंकार और बुद्धि हैं। अणिमा नामक सिद्धि वह है जिससे योगी अणुपरिमाणवाला हो जाता है। इससे योगी को त्रैलोक्य में अन्य प्राणियों के लिये अप्राप्य वस्तु भी प्राप्य हो जाती है। लघिमा से योगी संकल्प मात्र से अत्यन्त हल्का हो जाता है। इससे योगी शीघ्रगामी होता है। महिमा से योगी जब चाहे विशाल आकार का हो जाता है। प्राप्ति और प्राकाम्य से योगी अप्रतिहत गति से तीनों लोकों के भोगों को प्राप्त करता है। ईशित्व से योगी भूतों की उत्पत्ति,विनाश एवं व्यवस्थाओं को करने में समर्थ होता है। वशित्व से योगी सभी प्राणियों को वश में कर लेता है। यत्रकामावसायिता से योगी की इच्छा से इन्द्रियाँ, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, मन प्रवृत्त होते हैं।

स्मरण :

पाशुपतयोग का अन्तिम धर्म स्मरण है। ब्रह्म ही परम सूक्ष्म तत्त्व है, शाश्वत है। अतः योगी को सदैव ब्रह्म का सेवन अर्थात् स्मरण करना चाहिये।

तस्माद् ब्रह्म परं सूक्ष्मं ब्रह्म शाश्वतमुच्यते।
ब्रह्म एव हि सेवेत ब्रह्मैव परमं सुखम्।। [२२]

भूतात्मानं महात्मानं परमात्मानमव्ययम् ।
सर्वात्मानं परं ब्रह्म तद्वै ध्यात्वा न मुह्यति।। [२३]

वायुपुराण के पञ्चदश अध्याय में कहा गया है कि चतुर्दश संसारमण्डल को जान कर संसार के भय से पीड़ित होकर प्राणी संसार चक्र का स्मरण करता है। इस संसारचक्र से बचने के लिये योग मार्ग का आश्रयण कर आत्मदर्शन की चेष्टा करनी चाहिये। पाशुपतयोग में रुद्र को ही आत्मा और प्राण कहा गया है।

ऊँ प्राणानां ग्रन्थिरस्यात्मा रुद्रो ह्यात्मा विशान्तकः।
स रुद्रो ह्यात्मनः प्राणा एवमाप्याययेत् स्वयम्।।[२४]

इसीलिए प्राण की उपासना रुद्र की उपासना है, शिवतत्त्व की ही उपासना है। अतः पाशुपतयोग में प्राणायाम का सर्वाधिक महत्त्व दृष्टिगत होता है।

सन्दर्भ सूची

१. वा.पु. पू. १०/६३
२. वा.पु. पू. १०/७१
३. पा. सू. ३/३/१२१
४. रामाश्रमी, अमरकोष १/६३
५. वा. पु., पू. १०/७३
६. वा. पु., पू. १०/७४
७. वा. पु., पू. १०/७५-७६
८. पा. यो. सू. १/३४
९. वा. पु., पू. ११/२
१०. वा. पु., पू. ११/४
११. वा. पु., पू. ११/१०
१२. वा. पु., पू. ११/११
१३. वा. पु., पू. ११/१६
१४. श्रीमद्भगवद्गीता ६/१३
१५. वा. पु., पू. ११/१९
१६. वा. पु., पू. ११/२९
१७. वा. पु., पू. वही
१८. वा. पु., पू. ११/२७-२८
१९. पा. यो. सू. ३/३६
२०. वा. पु., पू. १२/६-९
२१. वा. पु., पू. १२/२९
२२. वा. पु., पू. १४/३
२३. वा. पु., पू. १४/१४
२४. वा. पु., पू. १५/८